सरल गीता

(श्रीमद्भगवद्गीता का संक्षिप्त पद्यानुवाद)

पद्यानुवादक
जगदीश प्रसाद शर्मा 'सरल'
(साहित्याचार्य)

श्रीरामचरितमानस सत्संग समिति (पंजीकृत)
ए–447, सेक्टर–47, नोएडा (उ.प्र.) के सौजन्य से

© श्रीमती राजवती देवी
116, होशियारपुर, सेक्टर–51
नोएडा–201301

मूल्य : 70/–
प्रथम संस्करण : 2013
प्रकाशक : श्रीरामचरितमानस सत्संग समिति (पंजीकृत)
मुद्रक : एक्सेलप्रिंट,
सी–36, फ्लैटेड फैक्ट्री कॉम्प्लेक्स
झण्डेवालान, नई दिल्ली–110055

Saral Gita

समर्पण

प्रातः स्मरणीय श्रद्धास्पद पूज्य पिताजी स्व. श्री पं. रामजीलाल शर्मा एवं पूज्या माताजी स्व. श्रीमती शान्ति देवी की पवित्र स्मृति में उन्हीं को यह श्रद्धा–सुमन सादर समर्पित।

–जगदीश प्रसाद शर्मा 'सरल'

भूमिका

'गीता' शब्द का अर्थ है–कहा हुआ उपदेशात्मक ज्ञान। यों तो गीता नाम के अनेक ग्रन्थ हैं, जैसे–रामगीता, शिवगीता, गणेशगीता, सूर्यगीता, ईश्वरगीता, व्यासगीता, उद्धवगीता, कपिलगीता, अष्टावक्रगीता, देवीगीता और श्रीमद्भगवद्गीता। इनके अतिरिक्त कुछ और भी गीतायें हैं, किन्तु सभी गीताओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध है–श्रीमद्भगवद्गीता। 'श्रीमद्भगवद्गीता' का अर्थ है–भगवान श्रीकृष्ण द्वारा कहा गया उपदेशात्मक ज्ञान अर्थात् श्रीमद्भगवद्गीता परब्रह्म परमात्मा के पूर्णावतार सच्चिदानंद भगवान श्रीकृष्ण के मुखारविन्द से निकली हुयी दिव्य वाणी है।

यह ज्ञानोपदेश भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा और परम भक्त अर्जुन को तब दिया था, जब कुरुक्षेत्र के मैदान में आमने–सामने खड़ीं कौरव–पांडवों की सेनाओं में अपने सगे संबंधियों को देखकर वीरवर अर्जुन को मोह हो गया था और महाभारत युद्ध का भयंकर परिणाम सोचकर उसने युद्ध न करने का निश्चय कर अपने हथियार डाल दिये थे। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अपने अवतार के भू–भार–हरण के उद्देश्य को पूर्ण करने और मोहग्रस्त अर्जुन का मोह–भंग कर उसे कर्तव्य–मार्ग पर लाने के लिये जो ज्ञानोपदेश दिया था, वही 'श्रीमद्भगवद्गीता' के नाम से विश्वविख्यात है। वह उपदेश भगवान वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत ग्रंथ में भीष्मपर्व के अन्तर्गत अठारह अध्यायों में वर्णित है।

श्रीमद्भगवद्गीता भगवान श्रीकृष्ण के मुख से निकली हुयी 'ज्ञान गंगा' है। कहा भी है–**"गीता गंगोदकं पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते"** (गीता रूपी गंगाजल को पीकर पुनर्जन्म

नहीं होता), इसलिये यह परम पावन और ज्ञान का सार है। यह सार भगवान श्रीकृष्ण ने 108 उपनिषदों को निचोड़ कर निकाला है अर्थात् गीता 108 उपनिषदों का सार है।

श्रीमद्भगवद्गीता में मानव कल्याण के तीन मार्ग बतलाये हैं—ज्ञान, कर्म और भक्ति। इन तीन मार्गों में से किसी एक मार्ग पर चलकर मनुष्य भव—सागर पार कर सकता है और जन्म—मरण के चक्र से छुटकारा पा जाता है। इन तीनों मार्गों में ज्ञान—मार्ग बहुत कठिन है, अतः ज्ञान—मार्ग से कर्म—मार्ग कुछ सरल है, किन्तु यह भी इतना सरल नहीं है, क्योंकि कर्म—मार्ग में निष्काम भाव (कर्मफल की इच्छा न करते हुये) से कर्म करना श्रेष्ठ बतलाया है और निष्काम भाव से कर्म करना हर किसी के बस की बात नहीं है, क्योंकि यह मन बड़ा ही चंचल और अघाना है। भोगों से मन की तृप्ति होती ही नहीं, इसलिये ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग की अपेक्षा भक्तिमार्ग सरल है।

यों तो कर्म, भक्ति और ज्ञान मार्गियों ने अपने—अपने अनुसार श्रीमद्भगवद्गीता की अनेक टीकायें की हैं, किन्तु उनमें तीन महापुरुषों—श्रीबालगंगाधर तिलक, संत ज्ञानेश्वर और वेदान्त प्रवर्तक आद्यजगद्गुरु शंकराचार्य की टीकायें विशेष उल्लेखनीय हैं। इन तीनों महापुरुषों ने कर्म प्रधान, भक्ति प्रधान और ज्ञान प्रधान टीकायें की हैं। विद्वान श्रीबालगंगाधर तिलक का कहना है कि गीता हमें कर्मयोग का पाठ पढ़ा कर कर्म—मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करती है। सिद्ध महात्मा संत ज्ञानेश्वर का कहना है कि गीता हमें भक्ति—मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित करती है। अद्वैतवाद के प्रवर्तक, वेदान्तवादी और परम ज्ञानी आद्य जगद्गुरु शंकराचार्य का कहना है कि आत्मा और परब्रह्म की एकता का पूर्ण ज्ञान होने पर ही मनुष्य को मोक्ष मिलता है अर्थात् ज्ञान से ही मुक्ति मिलती है, इसलिये गीता हमें ज्ञान—मार्ग पर चलने के लिये

प्रेरित करती है।

यदि गीतागायक भगवान श्रीकृष्ण की बात मानें तो उन्होंने अर्जुन को कर्म, भक्ति, ज्ञान का उपदेश देने के बाद एक वाक्य में ही गीता का सार बतला दिया है—**"हे अर्जुन! तू सब धर्मों (भगवान को प्राप्त करने के लिये ज्ञान, ध्यान, तप आदि समस्त विधियों) को छोड़ कर केवल मेरी शरण में आ जा। मैं तुझे सब पापों से मुक्त कर दूँगा, तू चिन्ता न कर।"**

सब ग्रंथों का सार वेद हैं, वेदों का सार उपनिषद् हैं, उपनिषदों का सार गीता है और गीता का सार भगवान की शरणागति है। जो मनुष्य अनन्य भाव से भगवान की शरण में आ जाता है, भगवान उसे सब पापों से मुक्त कर देते हैं, जिससे उसका कल्याण हो जाता है यानी निर्मल मन होने पर मनुष्य अपना नश्वर शरीर छोड़ने के बाद भगवान का परम धाम प्राप्त कर लेता है।

अब यहाँ यह शंका उठती है कि युद्ध के मैदान में खड़े अपने सगे संबंधियों को देखकर हृदय में उमड़ी करुणा के कारण मोहग्रस्त अर्जुन को कायर की भाँति युद्ध से पलायन करते देख कर भगवान श्रीकृष्ण द्वारा उसका मोह नष्ट करने के लिये शरीर की नश्वरता और आत्मा की अमरता का उपदेश देना, कर्तव्यच्युत अर्जुन को कर्तव्य—मार्ग पर लाने के लिये कर्म, भक्ति, ज्ञान योग का उपदेश देना, भीष्म द्रोण जैसे पूज्यवरों के वध से लगने वाले पाप के भय को दूर करने तथा उसे विजयी होने को आश्वस्त करने के लिये अपने विराट रूप का दर्शन कराकर समस्त वीरों को मृत दिखाना तो उचित था और कर्तव्य—बोध कराकर उसे कर्तव्य—मार्ग पर लाने के लिये अनिवार्य भी था, किन्तु इनके अलावा जो तप, दान, यज्ञ, त्याग, सत—रज—तम गुण, क्षेत्र—क्षेत्रज्ञ, क्षराक्षर आदि का विस्तार से जो उपदेश दिया, वह तो अनिवार्य नहीं था।

यही बात ध्यान में रखकर श्रीमद्भगवद्गीता जैसे गूढ़ दार्शनिक ग्रंथ को सरल–सुगम बनाने के लिये इसमें वर्णित मुख्य तीन मार्गों को ही केन्द्र बिन्दु मानकर यह **'सरलगीता'** सरल भाषा में काव्य रूप में लिखी है, जिससे संस्कृत भाषा न समझने वाले हिन्दी प्रेमी व्यक्ति भी इस महान ग्रंथ का लाभ उठा सकें।

श्रीमद्भगवद्गीता कोई कथा–कहानी का ग्रंथ नहीं है, यह तो गूढ़ ज्ञानोपदेश है। इसका काव्य रूपान्तर करना मेरे जैसे अनधिकारी व्यक्ति के लिये सरल नहीं था, अपितु बड़ा ही जटिल कार्य था, किन्तु मुझ अज्ञानी से जैसा बन पड़ा है, आपके समक्ष है। यह भगवान श्रीकृष्ण की कृपा का ही सुफल है। इसमें मेरे अज्ञानवश और बुद्धि भ्रम से श्रीमद्भगवद्गीता के गूढ़ भावों को यथार्थ रूप में न समझ पाने के कारण जहाँ कहीं भी मुझसे अर्थ का अनर्थ, भाव–भंग, छंद–भंग जैसी बड़ी त्रुटियाँ हो गयी हों तो पाठकों से मेरा नम्र निवेदन है कि वे मुझे मूर्ख समझ कर क्षमा करें। यदि इसे पढ़कर पाठकों को थोड़ी भी प्रसन्नता होगी तो मैं अपने प्रयास को सफल समझूँगा।

—सरल शास्त्री

आमुख

श्रीरामचरितमानस सत्संग समिति (पंजीकृत), नोएडा भगवान श्रीराम के आदर्शों द्वारा जन सामान्य के नैतिक उत्थान हेतु प्रयासरत है। इस हेतु प्रति वर्ष समिति के सौजन्य से श्रीराम जन्म महोत्सव आयोजित किया जाता है। इस आयोजन में सुप्रसिद्ध श्रीरामकथाकारों के प्रवचन के आयोजन के साथ ही एक स्मारिका का विमोचन किया जाता है, जिसमें भगवान श्रीराम के विभिन्न आदर्शों पर आधारित लेख प्रकाशित किए जाते हैं, जिनके मनन–चिंतन एवं अनुशीलन से समाज में नैतिक मूल्यों की वृद्धि होगी। हमारा प्रयास रहता है कि इस पावन वेला में कोई नया सद्ग्रन्थ भी प्रकाशित हो। इस दिशा में हमने संवत् 2067 में दिनांक 24.03.2010 को आयोजित श्रीराम जन्म महोत्सव में डॉ. राजाराम त्रिपाठी द्वारा लिखित 'बात से ही ज्ञान भक्ति का प्रभात' (तुलसी चरित्र) का विमोचन किया था तथा इसकी प्रतियाँ आगन्तुकों में वितरित की थीं। विक्रमी संवत् 2068 में दिनांक 12 अप्रैल 2011 को आयोजित श्रीराम जन्म महोत्सव के पावन पर्व पर 'श्रीराम कथा' का विमोचन हुआ था। इसके रचयिता भी डॉ. राजाराम त्रिपाठी थे। इस कृति में सातों काण्डों में कुल 1702 कवित्त/सवैये/दोहे/छन्द हैं। इसी श्रृंखला में संवत् 2070 में आयोजित होने वाले श्रीराम जन्म महोत्सव में श्री जगदीश प्रसाद शर्मा 'सरल' द्वारा रचित 'सरल गीता' (श्रीमद्भगवद्गीता का संक्षिप्त पद्यानुवाद) को समिति की स्मारिका के 20वें अंक के साथ ही विमोचन करने का प्रस्ताव है।

भगवान श्रीराम ही द्वापर युग में भगवान श्रीकृष्ण के रूप में प्रकट हुये, किन्तु इन दोनों के स्वभाव और कर्मों में अन्तर

है। भगवान श्रीराम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं और भगवान श्रीकृष्ण हैं लीला पुरुषोत्तम, अतः मानव का कल्याण इसी में है कि श्रीराम जी ने जो किया है उसका अनुशरण करें और श्रीकृष्ण जी ने गीता में जो कहा है, उसका पालन करें। श्रीमद्भगवद्गीता संस्कृत में है, अतः जो लोग संस्कृत नहीं जानते वे हिन्दी या अन्य भाषाओं में उसके अनुवाद को पढ़कर संतोष कर लेते हैं। यह आनंद का विषय है कि श्री जगदीश प्रसाद शर्मा 'सरल' ने 'सरल गीता' नामक रचना में श्रीमद्भगवद्गीता के श्लोकों का सरल हिन्दी भाषा में पद्यानुवाद किया है। इससे इसमें निहित ज्ञान–वैराग्य, कर्म तथा भक्ति योग को समझने में आसानी होगी। इस रचना के सभी छन्द गेय हैं।

इस पुनीत कार्य के लिए श्री जगदीश प्रसाद शर्मा 'सरल' साधुवाद के पात्र हैं। उनकी इस कृति के प्रकाशन से श्रीरामचरितमानस सत्संग समिति (पंजीकृत) अपने पुनीत उद्देश्यों की प्राप्ति में एक कदम आगे बढ़ी है, ऐसा मेरा मानना है।

—पं. दिनेश चंद्र शर्मा
अध्यक्ष, श्रीरामचरितमानस सत्संग समिति (पंजीकृत)
ए–447, सेक्टर–47, नोएडा

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता एक दिव्य ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को ज्ञान, कर्म और भक्ति योग का उपदेश दिया है। अठारह अध्यायों में सात सौ संस्कृत के श्लोकों में वह ब्रह्म विद्या विद्यमान है। जिसके मनन, चिंतन और अनुशरण से जीव भवसागर से सहज ही पार हो सकता है। इस दिव्य ग्रन्थ का सरल भाषा शैली में सरल शास्त्रीजी ने 'सरल गीता' के रूप में काव्य अनुवाद किया है। इस अनुवाद को उन्होंने कुल 5 अध्यायों में 274 छन्दों में इस प्रकार संजोया है कि गीता का सार नामशः ज्ञान योग, कर्म योग एवं भक्ति योग सरलता से समझ में आते हैं। अनुवाद इतना सटीक है कि कहीं भी विषयान्तर नहीं हुआ है। साथ ही विषय के अनुसार क्रमबद्ध तरीके से सारांश में गूढ़ विषयों का काव्य अनुवाद इस प्रकार किया है कि सभी छन्द गेय हैं। सभी छन्द काव्य के पुनरावृत्ति दोष से भी मुक्त हैं। शब्दों का चयन इतना सटीक है कि श्लोकों में दिए गए शब्दों के भाव के अति निकट हैं। उदाहरणार्थ कुछ श्लोक गीता के तथा उनका काव्य अनुवाद इस प्रकार से हैः–

(1) **चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम्।**
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्।।

(गीता अध्याय 6 श्लोक 34)

भगवन यह मन बलवान बड़ा
अत्यन्त हठीला चंचल है।
प्रभु, पवन रोकने सम इसको
वश में करना अति दुष्कर है।।

(सरल गीता : अध्याय 3 छन्द 60)

(2) तस्मात् सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च।

मयि अर्पित मनोबुद्धिः मामेव एष्यसि असंशयम्।।

(गीता : अध्याय 8 श्लोक 7)

हर काल याद करता मुझको, अपना कर्तव्य समर भी कर।
मन–बुद्धि समर्पण कर मुझको, पाएगा तू संदेह न कर।।

(सरल गीता : अध्याय 4 छन्द 58)

सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।

(गीता : अध्याय 18 श्लोक 66)

अर्जुन सब धर्मों को तज कर, तू आ जा मेरी शरण अरे।
कर दूंगा तुझको पाप मुक्त, तू शोक न कर क्यों व्यर्थ डरे।।

(सरल गीता : अध्याय 5 छन्द 4)

भारतीय संस्कृति के सभी प्राचीन ग्रन्थ यथा वेद, पुराण, श्रुति–स्मृति, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि सभी संस्कृत भाषा में हैं। इन सभी ग्रन्थों का भाषा में अनुवाद हो गया है अथवा हो रहा है, पर काव्यानुवाद अभी कुछ ही ग्रन्थों का हुआ है, अतः वर्तमान समय में जब संस्कृत भाषा का ज्ञान बहुत कम लोगों को है, तब काव्यानुवाद बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्रीमद्भगवद्गीता के कुछ काव्यानुवाद हुए हैं, पर इस दिव्य ग्रन्थ का काव्यानुवाद जितनी बार भी हो, सराहनीय है। श्री सरल शास्त्रीजी ने गीता का काव्यानुवाद करके परम पुनीत कार्य किया है।

मैं अपने को धन्य मानता हूँ कि मुझे यह प्रस्तावना लिखने हेतु 'सरल गीता' को मनन करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। इस हेतु श्री सरल शास्त्रीजी को साधुवाद।

(डॉ. भगवान दास पटैरया)
सदस्य, हिन्दी सलाहकार समिति
पर्यावरण एवं वन मंत्रालय
भारत सरकार

नोएडा,
श्रावण कृष्ण अष्टमी संवत् 2069
दिनांक 11 जुलाई सन् 2012

विषय–सूची

क्रम सं.	विषय	पृ. सं.
01	गीता–महिमा	13–14
	प्रथम अध्याय	
02	गीता का प्रसंग	15–21
	दूसरा अध्याय	
03	महारथियों का परिचय	22–24
04	अर्जुन–मोह	24–27
05	अर्जुन को उपदेश	27
06	ज्ञानयोग (ज्ञान–मार्ग)	28–31
	तीसरा अध्याय	
07	कर्मयोग (कर्म–मार्ग)	32–39
08	अवतार हेतु	39–40
09	कर्म–भेद	40–41
10	मन की चंचलता	42
	चौथा अध्याय	
11	भक्तियोग (भक्ति–मार्ग)	43–45
12	विभूति वर्णन	45–50
13	भक्त लक्षण	50–52
14	विश्वरूप–दर्शन	53–54
15	विराट रूप का वर्णन	55–57
16	अर्जुन को युद्ध की प्रेरणा	57–58
17	विराट रूप की स्तुति	58–60
18	भक्त–भेद	60–61
	पांचवां अध्याय	
19	गीता–सार	62–64

सरल गीता

(श्रीमद्भगवद्गीता का संक्षिप्त पद्यानुवाद)

गीता महिमा

गीता क्या रे? कंचन घट सा
शुचि प्रेम–सुधा रस छलकाता।
भव–ताप–तप्त मानव पीकर
दुस्तर भव–सागर तर जाता।।1।।

सम्पूर्ण धर्म–ग्रन्थों में यह
अत्यंत दमकता हीरा है।
गंगा की निर्मल धारा सी
शुचि शीतल पर गंभीरा है।।2।।

सब उपनिषदों का सार परम
भव सिन्धु–मुक्ति गंगोदक है।
यह ज्ञान कर्म और भक्तियोग
मनभावन पावन संगम है।।3।।

गूढातिगूढ यह कर्मयोग
तन रोमांचित करने वाली।
यह मिटा उदासी मोह सघन
आनन्द हृदय भरने वाली।।4।।

यह आत्मज्ञान के तत्वों को
अति सहज रीति समझाती है।
भव–सिन्धु–ताप संतप्त विकल
मानव को शान्ति दिलाती है।।5।।

भूले–भटके पथिकों को यह
सद्कर्म–मार्ग पर ले जाती।
इस कारण ही तो ग्रन्थ–जगत
यह कर्म प्रधान कही जाती।।6।।

पहचान करा पुरुषार्थ मनुज
निष्काम–कर्म प्रेरित करती।
अपना कर्तव्य निभाने को
उत्साह–तरंगें उर भरती।।7।।

यह द्वेष भरे मानव मन में
समता की ज्योति जलाती है।
संसार मरुस्थल में जन–मन
शुचि प्रेम–सुधा सरसाती है।।8।।

यह कर्म योग का पाठ स्वयं
योगेश्वर ने समझाया है।
कर्तव्य–विमुख को पथ दिखला
निष्काम–कर्म करवाया है।।9।।

प्रथम अध्याय
गीता का प्रसंग

भू भार–हरण अवतार लिया
भगवान कृष्ण ने धरती पर।
आ गया समय अब रणचंडी
रौंदेगी वीरों को जीभर।।1।।

उमड़ेंगी रण शोणित–नदियाँ
वीरों के शव बह जायेंगे।
कितनी ही महिलायें विधवा
बच्चे अनाथ हो जायेंगे।।2।।

बुझ जायेंगे कुल–दीप धरा
छायेंगे धन दुख–दर्द विषम।
भगवान कृष्ण के रहते भी
क्यों कर न उठाया शान्ति–कदम।।3।।

धर्मज्ञ पांडवों पर कोई
मानव उँगली न उठा पाये।
भीषण रण का दोषी न उन्हें
आगामी पीढ़ी ठहराये।।4।।

यह सम्यक सोच–विचार 'सरल'
मन जला जगत–हित भाव–दिये।
बन दूत हस्तिनापुर पहुँचे
'श्रीकृष्ण' शान्ति–प्रस्ताव लिये।।5।।

जा पहुँचे कौरव–सभा सुबह
यदुनन्दन संध्या–वंदन कर।
कर नमन पूज्य कृप द्रोण भीष्म।
बोले नृप को संबोधन कर।।6।।

हे कुरुकुल–रवि, कौरव–दल पर
आपत्ति विकट आने वाली।
विध्वंस वंश का कर देगी
टाली न गयी यदि मतवाली।।7।।

कुरुवंश धरा के वंशों में
सबसे ऊँचा है कुरुनन्दन।
यदि आप परस्पर झगड़ेंगे
कुलवधुओं का होगा क्रन्दन।।8।।

इस महा भयानक संकट से
जिस भाँति भरत कुल बच जाये।
दोनों पक्षों के वीरों को
वह रणचंडी न निगल पाये।।9।।

इस हेतु संधि–प्रस्ताव लिये
मैं शान्तिदूत बन कर आया।
संहार बिना ही कुरुकुल में
हो शान्ति, विनय करने आया।।10।।

यदि आप बचाना चाहें कुल
अपने मन सोच–विचार करो।
नदियाँ न लहू की बहें धरा
राजन दोनों दल संधि करो।।11।।

कर संधि, काल के मुख अटके
वीरों के प्राण बचा लायें।
इन आमंत्रित राजाओं को
सानन्द घरों को लौटायें।।12।।

नरनाथ, अनुज के पुत्रों का
अब और अधिक घोंटें न गला।
उनका अधिकार उन्हें दे दें
इसमें ही है कुरुवंश–भला।।13।।

अधिकार माँगने का उनका
जब स्वर्णिम अवसर आया है।
तब किस कारण दुर्योधन ने
रण का सामान जुटाया है।।14।।

कुरुकुल–हित को भ्राताओं से
युवराज संधि स्वीकार करो।
कुल पाँच गाँव देकर उनको
सम्पूर्ण राज्य का भोग करो।।15।।

दुर्योधन का उर भभक उठा
उनकी ये बातें सुनसुन कर।
बोला अंगार उगलते वह
अपने सिंहासन से उठ कर।।16।।

हे केशव, केवल हमको ही
तुम क्यों दोषी ठहराते हो।
लेकिन क्या दोष हमारा है
क्यों आप न यह बतलाते हो।।17।।

केशव, यह राज्य हमारा था
सो हम पर है, अन्याय नहीं।
दे दिया पिताजी ने मुझको
कर सकता इसके खंड नहीं।।18।।

जब तक मैं जीवित हूँ तब तक
उनसे में संधि न कर सकता।
सूई की नोक बराबर भू
बिन रण के उन्हें न दे सकता।।19।।

उसके कटु वचनों को सुन कर
माधव उर–सागर उमड़ाया।
जो ज्वार उठा मन भावों का
मुख से होकर बाहर आया।।20।।

रे दुष्टाचारी दुर्योधन
तू कहता दोष हमारा क्या?
कितने अन्याय किये तू ने
अपनों के प्रति, गिन पाया क्या?।।21।।

कुरुकुल–कलंक कपटी कायर
तू देता आया जग झाँसा।
रे खल छलिया! तू ने उन पर
फेंका न कौन सा छल–पाशा।।22।।

तू ने ही बचपन में छल से
विष दिया भीम को भोजन में।
मृत जान बाँध कर–पद उसको
फेंका गहरे गंगाजल में।।23।।

फिर जिन्दा उन्हें जलाने को
लाक्षागृह कुटिल रची रचना।
मन मुदित समझ करतूत सफल
पर भंग हुआ तेरा सपना।।24।।

अपने घर खिला जुआ, छल कर
धन हरण किया, क्या दोष न था।
कुलवधू द्रौपदी को बुलवा
अपमान किया, क्या पाप न था।।25।।

वन भेज वहाँ भी कितने ही
छल–वार किये उनके वध को।
अधिकार माँगने पर भी तू
देना न चाहता कुछ उनको।।26।।

इतना सब कुछ करने पर भी
निर्दोष मानता अपनों को।
निज अन्त समय पर पछताता
सोचेगा मेरे वचनों को।।27।।

बन गया गले की हड्डी अब
उलटा ही तेरा छल–पाशा।
रे कुटिल, शीघ्र पूरी होगी
रण में मरने की अभिलाषा।।28।।

यह सुन वह क्रोधित विषधर सा
फुंकार मारता चला गया।
तब गंगासुत ने दर्शाया
शब्दों से भावी दृश्य नया।।29।।

हे शान्तिदूत जग–शान्ति हेतु
तुमने तो पूर्ण प्रयास किया।
सर्वज्ञ कालवश उस खल ने
उपहास उड़ा अनसुना किया।।30।।

हो रहा प्रतीत मुझे ऐसा
नटवर की नव लीला होगी।
होगी नभ से शर–अग्नि–वृष्टि
वीरों से शून्य धरा होगी।।31।।

केशव के समझाने पर भी
जब भावी युद्ध न टल पाया।
वीरों के प्राण निगलने को
तब काल शिरों पर मँडराया।।32।।

जन–बुद्धि भ्रष्ट कर माया ने
दिखलायी अपनी दिव्य कला।
रण–यज्ञ प्राण–आहुति देने
वीरों का दल कुरुक्षेत्र चला।।33।।

कुरुक्षेत्र पहुँच रणवीरों ने
समरांगण में डाले डेरा।
'धृतराष्ट्र' भूप को महलों में
चिंता–वनव्याली ने घेरा।।34।।

उस काल 'व्यास मुनि' आ बोले
राजन मन में चिन्ता न करो।
होनी बलवान बड़ी, न टले
यह जान हृदय में धैर्य धरो।।35।।

यह धरा रक्त की प्यासी है
राजन, तुमसे सच कहता हूँ।
यदि स्वयं देखना चाहो रण
मैं दिव्य दृष्टि दे सकता हूँ।।36।।

मुनिदेव, कमल से मुख जिनके
देखे न अभी तक जीवन में।
चाहूँ न देखना अब उनको
अपनों से ही कटते रण में।।37।।

पर मुनिवर रण–घटनाओं को
सुनने की मेरी अभिलाषा।
इतनी अनुकम्पा कर मुझ पर
करुणाकर पूर्ण करें आशा।।38।।

हे भूप, तुम्हारे अन्तर्मन
जो पीड़ा उसे समझता हूँ।
यह ललक पूर्ण करने राजन
मैं अभी व्यवस्था करता हूँ।।39।।

'संजय' को देता दिव्य दृष्टि
यह वीर विज्ञ हो जायेगा।
प्रत्यक्ष घटी रण–घटनायें
घर बैठे तुम्हें सुनायेगा।।40।।

फिर क्या, उसको दे दिव्य दृष्टि
तत्क्षण वे अन्तर्धान हुये।
रण–दृश्य चक्षुवर संजय को
चलचित्र भाँति प्रत्यक्ष हुये।।41।।

दूसरा अध्याय
महारथियों का परिचय

नृप बोले–संजय अब रण में
उस दिव्य दृष्टि को दौड़ाओ।
दोनों पक्षों के वीरों ने
क्या किया मुझे सब बतलाओ।।1।।

संजय बोला–अरि पक्ष निरख
राजा दुर्योधन–मन डोला।
गुरु द्रोणाचार्य निकट जाकर
वह चतुराई से यह बोला।।2।।

आचार्य, तुम्हारे चेले ने
क्या व्यूहाकार खड़ी सेना।
उस धृष्टद्युम्न की चतुराई
देखें मेरे अरि की सेना।।3।।

उसमें गुरुदेव धनुर्धर बहु
भीमार्जुन से रणवीर बड़े।
महारथी सात्यकि नृप विराट
भूपाल द्रुपद रणधीर बड़े।।4।।

बलवान काशिनृप कुंतिभोज
नरश्रेष्ठ शैब्य संग्रामजयी।
नृप धृष्टकेतु वह युधामन्यु
नृप चेकितान सब समरजयी।।5।।

बलवान उत्तमौजा पुरुजित
ऐसे कितने ही महारथी।
अभिमन्यु द्रौपदी–पंचपुत्र
ये सभी जुझारू महारथी।।6।।

गुरुदेव जान लें निज दल के
वीरों को भी बतलाता हूँ।
निज सेना के सेनापति जो
उनके भी नाम गिनाता हूँ।।7।।

गुरु आप पितामह भीष्म कर्ण
संग्रामजयी कृप वीर बड़े।
नृप भूरिश्रवा नरवर विकर्ण
अश्वत्थामा रणधीर बड़े।।8।।

ऐसे बहु वीर निपुण रण में
मेरे हित लड़ने आये हैं।
निज प्राण हथेली पर रख कर
रण–आहुति देने आये हैं।।9।।

हालाँकि पितामह से रक्षित
निज सेना पर जय सुगम नहीं।
गुरुदेव भीम–रक्षित दल पर
जय पानी हमको कठिन नहीं।।10।।

फिर भी निज दल के वीर सभी
आज्ञा मानें गंगासुत की।
उनके चहुँ ओर सजग रहकर
सब वीर करें रक्षा उनकी।।11।।

यह सुन कर वीर पितामह ने
वनराज भाँति गर्जन करते।
निज शंखा बजाया उच्चस्वर
उस दुर्योधन को खुश करते।।12।।

तब शंख नगाड़े ढोल बिगुल
बज उठे अचानक एक साथ।
कोलाहल से नभ गूँज उठा
मन खिला कमल सा जगन्नाथ।।13।।

तदनन्तर अश्व सफेद जुड़े
बैठे थे उस उत्तम रथ पर।
रणनायक हरि–कुन्तीसुत ने
निज शंख बजाये उच्चस्वर।।14।।

हे भूप, भयानक उस स्वर ने
आकाश–धरा गुंजार दिये।
कौरव–दल के दुष्पथगामी
वीरों के मन भयभीत किये।।15।।

अर्जुन मोह

संजय बोला–जब दोनों दल
डट गये रणांगण में लड़ने।
तब धनुष उठा मधुसूदन से
ये बोले बोल धनंजय ने।।16।।

हे रणनायक, मेरे रथ को
दोनों दल बीच खड़ा करिये।
जब तक अरि–दल को देख न लूँ
तब तक रथ नाथ खड़ा रखिये।।17।।

यह सुन कर दिया धनंजय के
रथ को दोनों दल बीच खड़ा।
हे पार्थ, देख रण हेतु खड़े
अरि–दल वीरों को नजर गड़ा।।18।।

स्वजनों को देख रणांगण में
रणवीर धनंजय चकराया।
हो गया मोह जिससे उसका
मानस करुणा से भर आया।।19।।

विख्यात धनुर्धर रणबंका
रणधीर धनंजय मन डोला।
अति शोक–मग्न करुणस्वर में
मधुसूदन से वह यह बोला।।20।।

हे जीवन–नौका के नाविक
मैं रण में यह क्या देख रहा।
जिनसे करना है युद्ध मुझे
अरि–दल अपनों को देख रहा।।21।।

धृतराष्ट्र–सुतों का वध करके
गिरिधर होगा क्या हर्ष हमें।
अपनों का वध करने पर तो
धर्मज्ञ लगेगा पाप हमें।।22।।

निज बंधु पितामह का वध कर
क्या हम सुख से जी पायेंगे।
गुरु–हत्या का कर पाप महा
प्रभु, क्या हम नरक न जायेंगे।।23।।

आचार्य–पितामह के सम्मुख
किस भाँति लड़ूँ मैं अरिसूदन।
इन पर क्या बाण चलाऊँगा
ये पूज्य हमारे मधुसूदन।।24।।

इनका वध करने से अच्छा
मैं भीख माँग कर गुजर करूँ।
क्या इन्हें मार कर रुधिर सने
भोगों का मैं उपभोग करूँ।।25।।

हे प्रभु, कितने ही वीरों की
लाशें रण में बिछ जायेंगी।
कुल का क्षय होने पर कुल की
वधुयें विधवा हो जायेंगी।।26।।

परिणाम सोच कर मन व्याकुल
मम अंग शिथिल, मुख सूख रहा।
तन काँप रहा जल रही त्वचा
गांडीव हाथ से छूट रहा।।27।।

मैं कर न सकूँगा रण इनसे
मनमोहन से वह यह कहकर।
रथ में पीछे जा बैठ गया
निज शर तूणीर धनुष रख कर।।28।।

वह किंकर्तव्यविमूढ हुआ
मन मोह सघन घन मँडराया।
भूला निज धर्म, न धैर्य रहा
गिर गर्त गगन से घबराया।।29।।

अर्जुन को उपदेश

इस भाँति पार्थ को मोहलिप्त
देखा, प्रभु बोले समझाते।
हे वीर, तुम्हारे इस मुख से
ये बोल नहीं शोभा पाते।।30।।

हे अर्जुन, रण के अवसर पर
तुमको यह मोह हुआ कैसे।
इससे न मिलेगा स्वर्ग–सुयश
इसका आचरण किया कैसे।।31।।

मोही का करने मोह–भंग
ज्ञानी ने ज्ञान–कमल खोले।
रण–पथ पर लाने अर्जुन को
मनमोहन हँसते यह बोले।।32।।

हे पार्थ, विश्व–मंगल को मैं
ये तीन मार्ग बतलाता हूँ।
सुन ज्ञान कर्म अरु भक्ति सुपथ
तीनों ही पथ समझाता हूँ।।33।।

ज्ञानयोग (ज्ञान–मार्ग)

रे पार्थ, व्यर्थ कर रहा शोक
पांडित्य पूर्ण बातें करता।
लेकिन विद्वान न जिन्दों या
मुर्दों का शोक नहीं करता।।34।।

सर्दी–गर्मी की भाँति पार्थ
सुख–दुख भी आते–जाते हैं।
इनको सम रह कर सहन करो
इनसे न विज्ञ घबराते हैं।।35।।

सुख–दुःख भोगने में अर्जुन
कोई भी जीव स्वतंत्र नहीं।
प्राणी अपने कर्मानुसार
भोगा करते जग, नियम यही।।36।।

जिस भाँति विश्व में जन्म–मरण
स्वाभाविक होते रहते हैं।
बचपन यौवन वृद्धावस्था
स्वाभाविक पाते रहते हैं।।37।।

उस भाँति हमारे जीवन में
सुख–दुख भी आते रहते हैं।
पर रोक न सकते हम उनको
वे तो सहने ही पड़ते हैं।।38।।

निष्कर्ष निकाला विज्ञों ने
परिवर्तित तन रहता न सदा।
पर चेतन नित्य अपरिवर्तित
यह अजर–अमर मरता न कदा।।39।।

तन नश्वर है सो प्राणी का
निश्चित यक दिवस मरण होगा।
जिस प्राणी की हो गयी मृत्यु
उसका नव जन्म पुनः होगा।।40।।

हे पार्थ, जगत में जितने तन
कोई न अमर, सब नश्वर हैं।
पर तन में जो 'चेतन' रहता
वह जीवन–ज्योति सनातन है।।41।।

हे पार्थ, 'आत्मा' अविनाशी
यह जन्म न लेती कहीं कभी।
सुख–राशि अनादि अपरिवर्तित
यह अजर–अमर मरती न कभी।।42।।

यह नित्य अजन्मा शुद्ध–बुद्ध
जग–व्याप्त सच्चिदानन्दमयी।
इसका रहता अस्तित्व सदा
यह अविकारी आलोकमयी।।43।।

इसको हथियार न काट सकें
ज्वाला न जला सकती इसको।
इसको न समीर सुखा सकता
पानी न गला सकता इसको।।44।।

टूटे न घुले न बढ़े न घटे
इसको न जलाया जा सकता।
होती न कभी मोटी–पतली
इसको न सुखाया जा सकता।।45।।

ज्यों त्याग पुराने कपड़ों को
मानव नव धारण कर लेता।
त्यों त्याग पुराना तन चेतन
नूतन तन धारण कर लेता।।46।।

यह 'जीव' अंश है मेरा ही
मरता न कभी मारा जाता।
नश्वर तन के मरने पर भी
चेतन का नाश न हो पाता।।47।।

यह चेतन अविनाशी जिसकी
मति में यह भाव समा जाता।
हे पार्थ, विचारो निज मन में
वह कैसे किसको मरवाता।।48।।

इस भाँति समझ कर चेतन को
कुंतीनन्दन तू शोक न कर।
यदि जन्म–मरण माने तो भी
रे पार्थ, जरा भी शोक न कर।।49।।

गुरु–बंधु मृत्यु के भय से तुम
पथभ्रष्ट न होकर अडिग रहो।
क्षत्रिय–कुल की रण रीति रही
कर्तव्य समझ कर अड़े रहो।।50।।

निज वर्ण धर्म को देख तुझे
रण से कतराना उचित नहीं।
रण से बढ़कर रणवीरों को
कोई मंगलमय कर्म नहीं।।51।।

तुम क्षत्रिय हो रण करो निडर
चाहे रण में हो जीत–हार।
क्षत्रिय का रण कर्तव्य परम
क्षत्रिय को रण ही स्वर्ग–द्वार।।52।।

यदि रण न करेगा तो ये सब
तेरा उपहास उड़ायेंगे।
करुणा न समझ कर उलटे ही
तुझको कायर बतलायेंगे।।53।।

रण से हटने पर दुनिया की
नजरों में तू गिर जायेगा।
लोगों से निज निन्दा सुनकर
तू जीतेजी मर जायेगा।।54।।

यदि रण में मारा गया सखा
तो स्वर्ग दिव्य सुख पायेगा।
यदि जीत हुयी रण में तेरी
तो राज्यलक्ष्मी पायेगा।।55।।

लड्डू हैं दोनों हाथों में
इस कारण तुम चिन्ता न करो।
निश्चय कर पार्थ खड़े होकर
शर चढ़ा शरासन युद्ध करो।।56।।

तीसरा अध्याय

कर्मयोग (कर्म–मार्ग)

यह ज्ञान योग का विषय कहा
अब 'कर्मयोग' को बतलाता।
निष्काम कर्म कर मानव का
कर्मों का बंधन कट जाता।।1।।

कर्मों की गति गंभीर बड़ी
ज्ञानी भी समझ न पाते हैं।
निज कर्म–शृंखलाबद्ध जीव
भव–सागर टक्कर खाते हैं।।2।।

संसार–भवन भी कर्मों की
आधारशिला पर खड़ा हुआ।
मानव कर्मों की डोर बँधा
कर्मों के चरणों पड़ा हुआ।।3।।

संसार–चक्र की धुरी कर्म
नर–जीवन का आधार यही।
ऐसा धारिणी पर कौन हुआ
जिसने इसकी महिमा न कही।।4।।

कर्मानुसार ही सब प्राणी
पाते हैं जन्म–मरण तन–मन।
बल जाति योनि गति प्रकृति ज्ञान
मति रूप रंग सुख–दुख अरु धन।।5।।

चल रही कर्म की चक्की जग
जीवों को निशि–दिन पीस रही।
निर्दयी नियति जड़–चेतन को
गल्ले सम उसमें डाल रही।।6।।

कर्मों का बंधन बड़ा जटिल
उलझन सुलझाना सहज नहीं।
रे पार्थ, प्रलय होने पर भी
कटता कर्मों से फंद नहीं।।7।।

जग मेरा खेल, मिटाने को
जब महाप्रलय अवसर आता।
तब जगत–जाल को जीव सहित
मकड़ी की भाँति निगल जाता।।8।।

पर नष्ट न होते जीव–कर्म
वे बीज स्वरूप बने रहते।
फिर जब नव जग रचना करता
उनसे अंकुर फूटा करते।।9।।

जिसका जैसा रे! कर्म–बीज
वैसा नव जन्म मिला करता।
जो पहले कर्म किये जैसे
उनका फल प्राप्त हुआ करता।।10।।

कर्मों का हमसे दृढ़ नाता
रे! चोली–दामन का जैसे।
जब जीवन का आधार कर्म
तब कर्म त्याग सकते कैसे।।11।।

यह विश्व कर्म पर अवलम्बित
अनिवार्य सभी के लिये कर्म।
हर हाल कर्म करते रहना
हर प्राणी का है देह–धर्म।।12।।

चाहें न कर्म करना तो भी
तन से प्रतिक्षण होता रहता।
जैसे जीवों का श्वास सदा
दिन–रात स्वतः चलता रहता।।13।।

हे अर्जुन, कर्म न करने से
कुछ करना श्रेष्ठ, जगत कहता।
बिन कर्म किये तो जीवन में
तन का निर्वाह न हो सकता।।14।।

रे! कर्म–त्यागने पर भी तो
सुख–दुख से फंद न कटता है।
रे! कर्म–त्याग कर तो कोई
मानव न सिद्धि पा सकता है।।15।।

बिन कर्म किये तो पल भर भी
कोई भी व्यक्ति न रह सकता।
स्वाभाविक गुण से विवश हुआ
हर मानव कर्म किया करता।।16।।

चलता न कर्म–पथ पर जो नर
उसका दुर्लभ जीवन निष्फल।
जो करता निज कर्तव्य–कर्म
उसका जीवन ही धरा सफल।।17।।

जो कर्मों को कर्तव्य समझ
निष्काम भाव से करता है।
अपने उन कर्मों का प्रतिफल
उसको न भोगना पड़ता है।।18।।

अधिकार कर्म करने में, पर
फल में तेरा अधिकार नहीं।
कर अपना कर्म कुशलता से
पर कर्म–फलों की चाह नहीं।।19।।

फल में आसक्ति न रखकर तू
अपना कर्तव्य निभाये जा।
जग–मंगल परहित सत्पथ पर
तू अपने कदम बढ़ाये जा।।20।।

जो पुरुष इन्द्रियों को मन से
वश में कर भोगासक्त न हो।
नित कर्मयोग–पथ पर चलता
उस नर को ही तुम श्रेष्ठ कहो।।21।।

शुभ नियत कर्म कर–श्रेष्ठ यही
बिन कर्म न मंगल हो सकता।
तट पर बैठा क्या कोई नर
सरिता के पार पहुँच सकता।।22।।

जो लोक–रीति से नर जग में
अपना कर्तव्य नहीं करता।
उसका जीवन तो पाप–घड़ा
वह पापी व्यर्थ जिया करता।।23।।

मेरा कोई कर्तव्य नहीं
कोई न कामना करता हूँ।
तो भी जग मंगल करने को
कर्तव्य–कर्म मैं करता हूँ।।24।।

ईश्वर होते भी जग–हित को
मैं भी कर्मों को करता हूँ।
लेकिन न फलाशा रखने से
सुख–दुख से लिप्त न रहता हूँ।।25।।

यदि कर्म–मार्ग पर चलूँ न मैं
कोई न यहाँ पर कर्म करूँ।
यदि बैठा रहूँ निठल्ला मैं
तो कैसे जग–कल्याण करूँ।।26।।

यदि मैं कर्मों को करूँ न तो
कर्तव्य छोड़ देंगे सब जन।
क्या होगी लोक व्यवस्था की
दुर्दशा, कल्पना की निज मन।।27।।

खायेगा मानव मानव को
दानवता नाचेगी जग में।
हो जायेगी जग शान्ति भंग
जायेगी धरा रसातल में।।28।।

जो कर्म–मार्ग को अपनाता
वह मनुज सफलता पाता है।
आसक्ति–त्याग से ज्ञानोदय
उससे ईश्वर को पाता है।।29।।

कर्तापन का अभिमान त्याग
तू कर न कर्म फल–आशा से।
आसक्ति जला दे ज्ञान–अग्नि
कट जायेंगे बंधन–पाशे।।30।।

जो कर्म फलाशा से करता
वह कर्मों से बँध जाता है।
जो त्याग फलाशा कर्म करे
वह व्यक्ति शान्ति को पाता है।।31।।

जो लाभ–हानि में सम रहता
वह कभी न कर्मों से बँधता।
जो मुदित रहे हर हालत में
द्वन्द्वों से मुक्त रहा करता।।32।।

जो कर्म–फलों की चाह न कर
कर्तव्य कर्म–रत रहता है।
संन्यासी–योगी वही, न वह
जो अग्नि–कर्म को तजता है।।33।।

हे पार्थ, सकल कर्मों को जो
सुख–फल की चाह बिना करता।
दिन–रात कर्म करने पर भी
वह कोई कर्म नहीं करता।।34।।

जो त्याग कर्म–फल की इच्छा
कृष्णाश्रित तृप्त रहा करता।
निज रक्षा हेतु सुकर्म करे
उस नर को पाप नहीं लगता।।35।।

जो मानव अपने कर्मों को
मुझ ईश्वर को अर्पण करता।
वह कमल पुष्प की भाँति सखे
जग में निर्लिप्त रहा करता।।36।।

सब कर्म मुझे अर्पण कर तुम
मुझ पर ही निर्भर नित्य रहो।
मुझमें ही चित्त लगा हर पल
मुझ परमानन्द–निमग्न रहो।।37।।

ऐसा कर कृष्ण–कृपा से तू
भव–सिन्धु पार कर जायेगा।
यदि मेरी हित–वाणी न सुनी
परमार्थ–भ्रष्ट हो जायेगा।।38।।

इस समय मोह के वश होकर
रण करने से कतरायेगा।
तेरा स्वभाव कर विवश तुझे
तुझसे संग्राम करायेगा।।39।।

अध्यात्म–चेतना के द्वारा
मुझको सब कर्म समर्पित कर।
ममता–संताप रहित होकर
हे पार्थ, खड़ा हो जा रण कर।।40।।

अज्ञान–जनित संशय को तुम
शुचि ज्ञान–खड्ग से नष्ट करो।
अब कर्मयोग–पथ पर चलने
हे पार्थ खड़े हो, युद्ध करो।।41।।

हे पार्थ, कहे मैंने दो पथ
जिनसे जन सिद्धि जुटाते हैं।
कुछ 'ज्ञानयोग' को अपना कर
कुछ 'कर्मयोग' से पाते हैं।।42।।

यह दिव्य ज्ञान कल्पादि पार्थ
मैंने रवि को था बतलाया।
पर लुप्त हुआ इससे मैंने
हे भक्त तुझे अब बतलाया।।43।।

जन्मे हैं आप इसी युग में
रवि–जन्म सखे! कल्पादि हुआ।
मैं चकित आपके द्वारा फिर
यह कैसे उनको प्राप्त हुआ।।44।।

मेरे–तेरे बहु जन्म हुये
प्रभु बोले–बतलाता तुझको।
उन सबका ज्ञान मुझे, लेकिन
तू नहीं जानता उन सबको।।45।।

मैं नित्य अजन्मा अविनाशी
जगदीश्वर जग–जीवों रहता।
स्वाधीन प्रकृति को कर अपनी
माया से प्रकट हुआ करता।।46।।

अवतार हेतु

जब–जब भी होती धर्म–हानि
दुष्कर्म अधर्म बढ़ा करता।
तब–तब मैं भारतवर्ष भूमि
अपने को प्रकट किया करता।।47।।

निज भक्तों की रक्षा करने
मैं खल–संहार किया करता।
धारिणी पर धर्मोत्थान हेतु
हर युग अवतार लिया करता।।48।।

हे अर्जुन, मेरे जन्म–कर्म
अति दिव्य, समझना सरल नहीं।
जो समझ गया, तन त्याग पुनः
वह नर पड़ता भव–कूप नहीं।।49।।

ये चारों वर्ण रचे मैंने
सत रज तम–गुण कर्मानुसार।
उनका कर्ता होने पर भी
तू मुझे अकर्ता समझ यार।।50।।

मुझको न बाँधते कर्म कभी
इच्छा न कर्म फल की करता।
जो व्यक्ति जानता इस सच को
वह भी न कर्म–बंधन बँधता।।51।।

कर्म–भेद

निर्णय में कर्म–अकर्म क्या
ज्ञानी भी मोहित हो जाते।
वह कर्म बताता जान जिसे
जन कर्म–पाश से छुट जाते।।52।।

जगमूल–कर्म के तीन भेद
तू कर्म अकर्म विकर्म समझ।
हे पार्थ, कर्म–गति अति दुर्गम
फिर भी समझाता इन्हें समझ।।53।।

''श्रुति–सम्मति भाव–क्रियायें जो
वे 'कर्म' पुण्य शुभ कहलाते।
जो वेद–विरुद्ध 'विकर्म' अरे
निष्काम 'अकर्म' कहे जाते।।''54।।

जो देखो कर्मों में अकर्म
जो देखो कर्म अकर्मों में।
वह ज्ञानी योगी कर्मों को
करते भी लिप्त न कर्मों में।।55।।

संयमी शुद्ध मन–वश जिसके
जो सबसे प्रेम किया करता।
वह व्यक्ति कर्म करने पर भी
कर्मों की डोर नहीं बँधता।।56।।

वह मानव उत्तम जो सबको
अपनी ही भाँति निरखता है।
सब जीवों का सुख–दुख अपने
सुख–दुख की भाँति समझता है।।57।।

घट–घट वासी मुझ ईश्वर को
जो भक्ति भाव से भजता है।
भौतिक कर्मों को करते भी
वह नित मुझमें ही रहता है।।58।।

जो योगी श्रद्धा–भक्ति भाव
मुझमें नित चित्त लगाता है।
मेरी शुचि भक्ति मगन होकर
आनन्द अलौकिक पाता है।।59।।

मन की चंचलता

भगवन यह मन बलवान बड़ा
अत्यन्त हठीला चंचल है।
प्रभु, पवन रोकने सम इसको
वश में करना अति दुष्कर है।।60।।

हे पार्थ, कहा यह सच चंचल
मन सहज न वश में हो पाता।
अभ्यास–विरक्ति उभय द्वारा
चंचल मन वश में हो जाता।।61।।

शब्दादि विषय का रस चखने
जब भी यह चंचल मन जाये।
तब पार्थ उधर से खींच इसे
प्रभु के चरणों में ले जाये।।62।।

चौथा अध्याय
भक्तियोग (भक्ति–मार्ग)

हे अर्जुन, सुन अब वह जिससे
तू जान समग्र मुझे सकता।
जिस भाँति लगा मन को मुझमें
तू 'भक्तियोग' तो कर सकता।।1।।

लाखों में कोई एक मनुज
हरि–दर्शन की कोशिश करता।
हरि–दर्शन करने वालों में
विरला ही जान मुझे सकता।।2।।

सम्पूर्ण जगत का मूल हेतु
उत्पत्ति–प्रलय मुझको जानों।
जीवों का मात–पिता पालक
भव–सागर उद्धारक मानों।।3।।

सब मैं ही मेरे सिवा न कुछ
सब कुछ मुझ पर ही टिका हुआ।
धागे में मणियों भाँति सकल
संसार मुझी में गुँथा हुआ।।4।।

मैं दिव्य सच्चिदानन्दकन्द
परब्रह्म एकरस अविनाशी।
अव्यक्त अखंड अनंत अलख
अन्तर्यामी घट–घट वासी।।5।।

मैं चिन्मय निर्गुण–सगुण ब्रह्म
ब्रह्मा शिव विष्णु दिवाकर हूँ।
मैं निराकार–साकार उभय
सुख–सिन्धु दया का सागर हूँ।।6।।

मैं जगत–बीज जग–निर्माता
जग–रक्षक जग–संचालक हूँ।
मैं जगन्नियन्ता जगदीश्वर
जग–पालक जग–संहारक हूँ।।7।।

मैं व्यापक जग के कण–कण में
वह कौन जगह मैं जहाँ नहीं।
बाहर–भीतर से देख रहा
मुझसे कुछ भी तो छुपा नहीं।।8।।

साधारण नर न, पुराण पुरुष
सर्वज्ञ अजन्मा परमेश्वर।
जग कर्ता भर्ता संहर्ता
शरणागतवत्सल सर्वेश्वर।।9।।

जग–मंच बना नव–नव नाटक
खोला करता मैं नटनागर।
भक्तों की जीवन–नौकायें
मैं पार लगाता भव–सागर।।10।।

तब अर्जुन बोला–आप दिव्य
देवेश परम पावनतम हैं।
परब्रह्म अजन्मा नारायण
जग–व्यापक सत्य सनातन हैं।।11।।

तुम भूतेश्वर सबके उद्गम
देवों के देव जगत–स्वामी।
जानें अपने को आप स्वयं
जग–मंगल–कर्ता निष्कामी।।12।।

सर्वेश निजी ऐश्वर्यों को
कर दया मुझे अब बतलायें।
जिनके द्वारा इन लोकों में
तुम व्याप्त, पर न जन लख पायें।।13।।

किस भाँति तुम्हारा चिन्तन कर
योगेश तुम्हें जानूँ कैसे?
हे भगवन किन–किन रूपों में
तुमको मैं याद करूँ कैसे?।।14।।

यह बात न आती मति मेरी
तुम जड़–चेतन में रहते हो।
प्रभु समझाओ स्पष्ट मुझे
कैसे कण–कण में रहते हो।।15।।

विभूति वर्णन

हे पार्थ, तुझे अब मैं अपने
ऐश्वर्यों को बतलाता हूँ।
उनका कोई भी अंत नहीं
कुछ मुख्य तुझे बतलाता हूँ।।16।।

अर्जुन, जीवों के अन्तर्गत
रहता सबका परमेश्वर हूँ।
मैं इस जग का आद्यंत मध्य
सब जीवों का कालेश्वर हूँ।।17।।

मैं शब्द गगन में, स्पर्श पवन
जल में रस, रूप हुताशन में।
मैं ही पृथ्वी में गंध पार्थ
अति दुस्तर सिंधु जलाशय में।।18।।

मैं बीज सनातन जीवों का
मैं ही जीवों में जीवन हूँ।
सब जीवों में मैं काम भाव
बैठा सबके अन्तर्मन हूँ।।19।।

मैं सूर्य–चन्द्र में प्रभा पार्थ
मैं तेज तेजवानों का हूँ।
ओंकार अक्षरों में मैं ही
मैं ज्ञान ज्ञानवानों का हूँ।।20।।

मैं ही पावक में दाहकता
तप करने वालों का तप हूँ।
मैं ही वेदों में सामवेद
मैं ही तो यज्ञों में जप हूँ।।21।।

मैं बन कर प्राण–अपान सकल
जीवों के तन में रहता हूँ।
मैं ही सम्पूर्ण वनस्पतियों
शशि बन जीवन–रस भरता हूँ।।22।।

मैं ज्ञेय, ज्ञान होता मुझसे
जीवों के उर में रहता हूँ।
वेदान्त रचा करता मैं ही
मैं ही वेदों का ज्ञाता हूँ।।23।।

मैं ऋतुओं में मधुमास मधुर
मैं ही वृक्षों में पीपल हूँ।
आसक्ति–कामना से वंचित
मैं ही बलवानों का बल हूँ।।24।।

सिद्धों में सिद्ध कपिल मुनि मैं
शंकर एकादश रुद्रों में।
नदियों में पावन गंगाजी
गायत्री वैदिक छन्दों में।।25।।

मैं धनुर्धरों में रामचन्द्र
आलोक दिवाकर में मैं ही।
मैं मुनियों में मुनि वेदव्यास
बैठा सबके मन में मैं ही।।26।।

मैं सकल जगत का जगत–बीज
यदुकुल वीरों में वासुदेव।
सेनापतियों में कार्तिकेय
देवों में सुरपति इन्द्रदेव।।27।।

जग–जीवों की उत्पत्ति हेतु
मैं ही तो मृत्यु सकल प्राणी।
मैं सकल नारियों में मेधा
शोभा धृति कीर्ति क्षमा वाणी।।28।।

मैं परशुराम यम भृगु नारद
मन सकल इन्द्रियों में मैं ही।
मैं नागों में हूँ शेषनाग
नभ नक्षत्रों में शशि मैं ही।।29।।

मैं खग–पशुओं में गरुड़–सिंह
नगराज हिमालय अचलों में।
भक्तों में नृप प्रह्लाद भक्त
जप यज्ञ पार्थ मैं यज्ञों में।।30।।

शूकर नरसिंह स्वरूपों में
आकर असुरों का नाश किया।
त्रेता में धार कर राम रूप
मैंने निशिचर–संहार किया।।31।।

इस युग में भी शिशुपाल–कंस
जैसे कितनों को मारा है।
इस काल नरेशों कौरव–दल
वध करने का प्रण ठाना है।।32।।

हे वीर धनंजय अंत नहीं
मेरी विभूतियों की माया।
मैंने तुमसे जो कहा पार्थ
संक्षेप रूप में बतलाया।।33।।

हे भारत अपनी माया से
इस जग को मैं ही रचता हूँ।
मैं ही इसका पालन करता
संहार स्वयं ही करता हूँ।।34।।

मेरी मरजी के बिना अरे
पत्ता तक भी हिलता न यहाँ।
मेरे संकल्प बिना रण सी
घटना घट सकती भला कहाँ।।35।।

इस हेतु मारने में इनको
तुझको कुछ पाप नहीं होगा।
हे पार्थ अवज्ञा करने पर
तेरा कल्याण नहीं होगा।।36।।

मैं परम धाम पालक स्वामी
आधारशिला–जग शरणालय।
शुभ–अशुभ कर्म–फलदाता मैं
मैं बीज–अनाशी सृष्टि–प्रलय।।37।।

कल्पांत समय सब जीवों को
अपनी ही प्रकृति रखा करता।
नव कल्पारम्भ समय उनको
मैं फिर उत्पन्न किया करता।।38।।

यह प्रकृति–शक्ति मेरी मुझसे
प्रेरित हो कार्य किया करती।
सम्पूर्ण जगत को बार–बार
रचती अरु नष्ट किया करती।।39।।

हर प्राणी के मन–मन्दिर में
मैं ही तो पार्थ विराज रहा।
मैं सब जीवों को यंत्र भाँति
अपनी माया से घुमा रहा।।40।।

सम्पूर्ण जगत का कारण मैं
मुझसे सब जन्म लिया करते।
यह तथ्य समझ कर विज्ञ पुरुष
मुझ परमेश्वर को ही भजते।।41।।

जब मैं लेता अवतार धरा
ईश्वर न समझते जन मुझको।
पर श्रद्धा–भक्ति भजा करते
मम भक्त समझ ईश्वर मुझको।।42।।

भक्त लक्षण

जो गर्व न करता हितकारी
सुख–दुख भय में सम रहता है।
जिसको न कर्मफल की इच्छा
संतुष्ट सदा ही रहता है।।43।।

करता न कभी जो हर्ष–शोक
अभिलाषा शोच न करता है।
मानापमान यश–अपयश अरु
सर्दी–गर्मी सम रहता है।।44।।

सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों को
तज कर मेरा जप करता है।
मुझको अपना सर्वस्व समझ
मुझ पर जो निर्भर रहता है।।45।।

वह मेरा प्यारा भक्त परम
जो तन–मन पर संयम रखता।
मुझमें मन–बुद्धि अचल करके
मेरी ही भक्ति किया करता।।46।।

''जो भक्त भक्ति से मुझको जल
फल फूल पत्र अर्पण करता।
जो दिया प्रेम से मुझको मैं
उसको स्वीकार किया करता''।।47।।

जो भक्त ध्यान करते मुझको
निष्काम भाव से भजते हैं।
मैं योग–क्षेम करता उनका
जो भजन–परायण रहते हैं।।48।।

जो भक्त लगा कर मन मुझको
सर्वस्व समर्पण करते हैं।
मेरी चर्चा करते–सुनते
वे परमानन्दित रहते हैं।।49।।

हे पार्थ, अचल मन से मुझको
जो भक्त निरन्तर भजता है।
वह व्यक्ति सुगमता से दुर्लभ
मेरा शुभ दर्शन करता है।।50।।

जो हर हालत में मेरी ही
शुचि भक्ति अचल मन करता है।
वह मेरा दुर्लभ दर्शन कर
कर्मों की डोर न बँधता है।।51।।

मेरी अनुकम्पा पाकर वह
भव–सागर में पड़ता न कभी।
मिल जाता मेरा परम धाम
वह पुनर्जन्म पाता न कभी।।52।।

होते हैं चार प्रकार भक्त
ज्ञानी जिज्ञासु धनेच्छु दुखी।
ये चारों कर्म–फलेच्छुक नर
निष्कामी होता परम सुखी।।53।।

इन चारों में भी ज्ञानी जन
जो भक्ति सदा करता रहता।
वह सर्वोत्तम अति प्रिय मुझको
उसको भी मैं प्रियतम लगता।।54।।

ये चारों भक्त उदार, मगर
ज्ञानी तो मेरा अपना है।
मन–बुद्धि लगा कर मुझमें वह
दिन–रात मुझे ही भजता है।।55।।

जो भजते भक्त मुझे अर्जुन
मेरी छवि को मन में रखते।
जो करते मेरी भक्ति विमल
वे दिव्य धाम पाया करते।।56।।

बन भक्त, लगा तू मन मुझमें
पूजन कर वन्दन कर मुझको।
अनुरक्त भक्ति में होकर तू
पायेगा निश्चित ही मुझको।।57।।

हर काल याद करता मुझको
अपना कर्तव्य समर भी कर।
मन–बुद्धि समर्पण कर मुझको
पायेगा, तू संदेह न कर।।58।।

विश्वरूप–दर्शन

प्रभु, आप अलौकिक वैसे ही
जैसा अपने को बतलाते।
योगेश्वर अपना विश्वरूप
क्यों कर न मुझे अब दिखलाते।।59।।

बोले भगवान–सखा अर्जुन
अब मेरे अद्भुत रूप देख।
अनगिनत भव्य दिव्याकृतियाँ
बहु रंगों वाले रूप देख।।60।।

पर तू अपनी इन आँखों से
वह देख न सकता दिव्य रूप।
देता हूँ तुझको दिव्य दृष्टि
तब देख सकेगा विश्व रूप।।61।।

संजय बोला–नृप, यह कह कर
योगेश्वर ने तन फैलाया।
रणभूमि अलौकिक विश्वरूप
कुन्तीनन्दन को दिखलाया।।62।।

उस विश्वरूप में अर्जुन ने
देखे नाना मुख नयन हाथ।
उस दिव्य तेज से समता तो
कर सकते लाखों रवि न नाथ।।63।।

बहु दिव्य सुगंधित मालायें
दिव्याम्बर शोभा बढ़ा रहे।
हथियार उठाये अगणित कर
तन चार चाँद थे लगा रहे।।64।।

अन्तर्मन विस्मय तन पुलकित
मन–भाव–पिटारी को खोला।
कर श्रद्धा–भक्ति नमन अर्जुन
करबद्ध विनय करते बोला।।65।।

विराट रूप का वर्णन

हे कृष्ण, आपके तन में मैं
सब सुर जीवों को देख रहा।
कमलासन पर बैठे ब्रह्मा
शिव ऋषि मुनियों को देख रहा।।66।।

हे विश्वेश्वर हे विश्वरूप
मैं रूप अनेकों देख रहा।
अगणित शिर मुख आँखें कर पद
जिनका न अन्त अवलोक रहा।।67।।

हे नाथ, रूप क्या, तेज–पुंज
रवि–तेज भाँति नभ फैल रहा।
इस दिव्य रूप का तो मुझको
प्रभु, आदि न अंत न दीख रहा।।68।।

ये दशों दिशायें तुम से ही
आलोकित होते देख रहा।
अत्यन्त भयानक रूप देख
लोकों को कंपित देख रहा।।69।।

अगणित विकराल मुखों से प्रभु
मैं अग्नि निकलती देख रहा।
उस धधकी ज्वाला की लपटों
इस जग को जलते देख रहा।।70।।

हे ज्योतिर्मय भगवान तुम्हें
नभ चुम्बन करते देख रहा।
ये लोक चतुर्दश काँप रहे
करबद्ध खड़े सुर देख रहा।।71।।

विकराल मुखों से हे भगवन
धधकी ज्वालायें निकल रहीं।
जा रहे मुखों में महारथी
वे उन वीरों को निगल रहीं।।72।।

जैसे नदियों के जल–प्रवाह
जाते हैं सागर के अन्दर।
वैसे ही ये नर लोक वीर
जा रहे आपके मुख अन्दर।।73।।

अपने विकराल मुखों से प्रभु
जा रहे निगलते वीरों को।
विकराल नुकीली दाढ़ों से
कर रहे चूर्ण रणधीरों को।।74।।

मैं भीष्मपितामह द्रोण कर्ण
वीरों को जलते देख रहा।
कुछ वीरों के मुंडों को तो
दाँतों में अटके देख रहा।।75।।

विकराल भयानक दाढ़ों में
कितनों को पिसते देख रहा।
कितनों को दन्त–दराजों में
शिर सहित फँसे मैं देख रहा।।76।।

हे देव, पतंगों से मुख में
जलते वीरों को देख रहा।
भालों सी दाढ़ों पर लटके
कौरव–दल को अवलोक रहा।।77।।

हे नाथ, आपका रूप देख
जग के सब प्राणी घबराये।
इस उग्र रूप में आप कौन
देवेश मुझे यह बतलायें।।78।।

अर्जुन को युद्ध की प्रेरणा

हरि बोले–मैं हूँ महाकाल
दुष्टों का वध करने आया।
तुम देख रहे निज आँखों से
इन सबका अन्त समय आया।।79।।

ये सब अपने कर्मानुसार
मरने को रण में खड़े हुये।
मैं ही इन सबका मारक हूँ
ये काल–पाश में बँधे हुए।।80।।

मेरे चंगुल में फँसे हुये
मुझसे न दुष्ट बच पायेंगे।
यदि तू न करेगा वध इनका
तो भी ये मारे जायेंगे।।81।।

इस हेतु सकल स्वजनों के प्रति
अपनी ममता का त्याग करो।
रण को अपना कर्तव्य समझ
कुंतीनन्दन संग्राम करो।।82।।

मैं मार चुका भीष्मादि वीर
फिर तुम क्यों पाप विचार करो।
हे पार्थ, उठो कायरता तज
जीतोगे तुम संग्राम करो।।83।।

जगदीश्वर के वचनों को सुन
कर बारंबार नमन झुक कर।
करबद्ध भक्ति–श्रद्धा सविनय
अर्जुन बोला पुनि गद्गद स्वर।।84।।

विराट रूप की स्तुति

''तुम पुरुष पुरातन आदि देव
इस जग के परमाधार तुम्हीं।
तुम से ही यह भव–सिन्धु व्याप्त
तुम ही नाविक पतवार तुम्हीं।।85।।

तुमको निज सखा समझ मैंने
परिहास तुम्हारा किया बड़ा।
महिमा न समझ हठ से मैंने
अपमान तुम्हारा किया बड़ा।।86।।

तुम अग्नि पवन यम वरुण चन्द्र
जग–व्याप्त सर्वमय नमस्कार।
निस्सीम शक्ति बल तेज बुद्धि
गुण ज्ञान मनोहर नमस्कार।।87।।

हे नाथ, भूल से जो मैंने
अपमान किया है क्षमा करें।
इस सेवक का शत बार नमन
हे जगन्नाथ स्वीकार करें।।88।।

चर–अचर जगत के जनक आप
गुरुवर न आप सा हो सकता।
फिर तीनों लोकों में तुम से
बढ़ कर क्या कोई हो सकता।।89।।

देवादिदेव, यह रूप देख
लग रहा भयानक डर मुझको।
मेरे तो प्राण निकलने को
हो रहे, समेटो अब इसको''।।90।।

धर्मज्ञ धनुर्धर कुंतीसुत
मैं इत्थंभूत तुझे कहता।
श्रुति यज्ञ दान तप पुण्यों से
यह रूप न देखा जा सकता।।91।।

यह रूप भयानक देख डरा
माया से इसे छिपाता हूँ।
अब देख प्रेम से निडर हुआ
नारायण रूप दिखाता हूँ।।92।।

यह कह कर प्रभु ने अर्जुन को
निज रूप चतुर्भुज दिखलाया।
भयभीत पार्थ को धैर्य बँधा
फिर द्विभुज रूप को दिखलाया।।93।।

धार रूप मनोहर प्रभु बोले
हे पार्थ, किया जिसका दर्शन।
वह रूप परम दुर्लभ जग में
होता न सहज उसका दर्शन।।94।।

जो करता मेरी शुद्ध भक्ति
सब कर्म मुझे अर्पण करता।
निर्वैर भाव मेरा सेवक
मेरा दुर्लभ दर्शन करता।।95।।

भक्त–भेद

जो भक्त भजें अव्यक्त ब्रह्म
साकार सगुण को जो भजते।
इन दोनों भक्तों में भगवन
उत्तम प्रिय भक्त किसे कहते।।96।।

साकार सगुण में जो मानव
मन अविचल कर मुझको भजते।
हे कुंतीनन्दन पार्थ सखे
वे भक्त मुझे उत्तम लगते।।97।।

पर जो योगी मन–बुद्धि परे
निर्गुण में ध्यान लगाता है।
चंचल मन को अविचल करके
वह भी मुझको ही पाता है।।98।।

पर निर्गुण ब्रह्म उपासक के
पथ में दुःखाचल अड़ा हुआ।
तन वालों को वह ज्ञान–मार्ग
अति दुष्कर काँटों भरा हुआ।।99।।

सम्पूर्ण शुभाशुभ कर्मों को
जो भक्त मुझे अर्पण करता।
मम अर्चन करता भक्ति भाव
वह मेरा शुचि दर्शन करता।।100।।

जो चंचल मन को अविचल कर
मेरा ही ध्यान किया करता।
मैं मुदितमनः अनुकम्पा कर
भव–सागर पार उसे करता।।101।।

मुझ परमेश्वर के चरणों जब
तू अपना चित्त लगायेगा।
मेरी अनुकम्पा से अर्जुन
तू शान्ति परम पद पायेगा।।102।।

पांचवां अध्याय
गीता–सार

मानव–मंगल के तीन मार्ग
हे सखे! तुझे ये बतलाये।
अब ज्ञान कर्म या भक्ति चुनो
वह कर जो तेरे मन भाये।।1।।

तुम मेरे अति प्रिय मित्र, अतः
अन्तिम निष्कर्ष सुनाता हूँ।
इस गीता का संक्षिप्त सार
हे पार्थ, तुझे बतलाता हूँ।।2।।

**"बन भक्त सदा मम चिन्तन कर
कर मेरी पूजा मुझे नमन।
पा जायेगा तू पार्थ मुझे
प्रियवर मेरा यह सत्य वचन।।3।।**

**अर्जुन, सब धर्मों को तज कर
तू आ जा मेरी शरण अरे।
कर दूँगा तुझको पाप–मुक्त
तू शोक न कर, क्यों व्यर्थ डरे।।4।।**

**निज दंभ–त्याग अर्पण कर दे
अपने जीवन की डोर मुझे।
यह प्रण मेरा मैं कर दूँगा
इस भव–सागर से पार तुझे"।।5।।**

अर्जुन क्या तूने सुना इसे
एकाग्रचित्त से भक्ति भाव।
हो गया अरे! क्या मोह नष्ट
आ गयी तीर क्या चित्त–नाव।।6।।

उपनिषद–गऊ माताओं का
मधु तत्व–दुग्ध दुह कर रण में।
अर्जुन बछड़े को पिला दिया
प्रभु ने, वह सबल हुआ क्षण में।।7।।

हे नाथ, हो गया मोह–भंग
कोई न रहा संशय मुझको।
आदेश दीजिये रणनायक
सैनिक तैयार खड़ा रण को।।8।।

यों कह कर सजग हुआ फिर से
नभ में चमका ज्यों ध्रुव तारा।
टंकार धनुष की कर उसने
उस कौरव–दल को ललकारा।।9।।

संजय बोला–राजन, मैंने
मुनिवर की अनुकम्पा पाकर।
योगेश्वर के कमलानन से
यह सुना ज्ञान–सुख का सागर।।10।।

यह भूप बड़ा अद्भुत मधुमय
दिव्यातिदिव्य मंगलकारक।
हो रहा परम आनन्दित मैं
आनन्दमयी निधि को पाकर।।11।।

जो शुद्ध चित्त होकर पावन
गीता का पाठ किया करता।
भव–सागर को कर पार व्यक्ति
सुख–सागर मग्न रहा करता।।12।।

गीता रूपी गंगाजल का
जो पान भक्ति से करता है।
उसको न 'सरल' फिर इस दुखमय
दुनिया में आना पड़ता है।।13।।

कवि परिचय

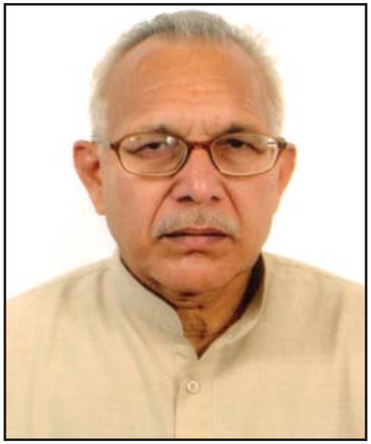

नाम : जगदीश प्रसाद शर्मा 'सरल'

जन्म : 01.07.1950, ग्राम–तलवार, जिला–बुलन्दशहर (उ.प्र.)

शिक्षा : हाईस्कूल : द्वितीय श्रेणी, एल.डी.ए.वी. इण्टर कॉलेज, अनूपशहर (उ.प्र.)

पूर्व मध्यमा : प्रथम श्रेणी, श्री भागीरथी संस्कृत महाविद्यालय, गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)

उत्तर मध्यमा : प्रथम श्रेणी, श्री भागीरथी संस्कृत महाविद्यालय, गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)

शास्त्री : (साहित्य) द्वितीय श्रेणी, श्री भागीरथी संस्कृत महाविद्यालय गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)

आचार्य : (साहित्य) प्रथम श्रेणी, श्री भागीरथी संस्कृत महाविद्यालय गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)

सेवा : अध्यापन : 4 वर्ष, श्री राममनोहर लोहिया स्मारक हाईस्कूल गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)

अध्यापन : 1 वर्ष, श्री बाबूराम हाईस्कूल तलवार (बुलन्दशहर)

अध्यापन : 1 वर्ष, श्री भागीरथी संस्कृत महाविद्यालय गढ़मुक्तेश्वर (मेरठ)

पत्रकारिता : 7 वर्ष, दिल्ली प्रेस, झंडेवालान, नई दिल्ली

पत्रकारिता : 27 वर्ष, दैनिक हिन्दुस्तान, कनॉट प्लेस, नई दिल्ली मुख्य उपसंपादक के पद से सेवा–निवृत्त

सम्पादन : दिल्ली पुलिस में आयुक्त पद पर दिल्ली सचिवालय सुरक्षा में कार्यरत शिवजी तिवारी द्वारा लिखित अलौकिक ईश्वरीय गीता तथा अभिशप्त (उपन्यास) का सम्पादन

सम्मान : सम्पादन कार्य के लिये दैनिक हिन्दुस्तान द्वारा पुरस्कृत

लेखन कार्य : विभिन्न पत्र–पत्रिकाओं में लेख–कवितायें आदि प्रकाशित

अप्रकाशित कृतियाँ

01. मधुर कथा श्रीराम की	महाकाव्य
02. रामकथा	महाकाव्य
03. महाभारत	महाकाव्य
04. श्रीकृष्ण–लीला	खंडकाव्य
05. लोपामुद्रा	खंडकाव्य
06. रामदूत हनुमान	खंडकाव्य
07. सुंदरकांड	खंडकाव्य
08. मानवी	खंडकाव्य
09. मधुर कलश	काव्य
10. भक्ति कलश	काव्य
11. ज्ञान कुसुमांजलि	काव्य
12. विवाह कुसुमांजलि	काव्य
13. अपराजिता हिन्दू संस्कृति	काव्य
14. गीति काव्य	काव्य
15. दोहे सरलाचार्य के	काव्य
16. संक्षिप्त गीता	काव्य
17. जगद्गुरु शंकराचार्य	काव्य
18. पतितपावनी गंगा	काव्य
19. श्रीकृष्ण मणिमाला	काव्य
20. श्रीकृष्ण–सुदामा मिलन	काव्य
21. भवतारिणि भव पार करो	काव्य
22. परिवार भवन का भव्य कलश	काव्य
23. तुलसी–मणिमाला (तुलसीदास की जीवनी)	काव्य
24. गीता–मणिमाला	काव्य
25. भगवती सती	काव्य
26. भगवती पार्वती	काव्य
27. शिव विवाह	काव्य
28. पंच विभूतियाँ	काव्य
29. मेरा बचपन	काव्य
30. श्रीराम शतक	काव्य
31. श्रीसीता शतक	काव्य
32. शिवरात्रि शतक	काव्य
33. दुर्गा शतक	काव्य
34. नारी शतक	काव्य
35. सरिता शतक	काव्य
36. सागर–मंथन	काव्य
37. कृष्ण–लीला (बालकाव्य)	काव्य
38. बाल कवितायें	काव्य
39. भगवती दुर्गा (दुर्गासप्तशती का पद्यानुवाद)	काव्य
40. श्रीसत्यनारायणकथा (पद्यानुवाद)	काव्य
41. गीता (श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद)	काव्य
42. व्याकरण दर्पण (हिन्दी व्याकरण)	गद्य
43. गद्य मुक्तावली	गद्य
44. दशावतार	गद्य
45. हमारे देवता	गद्य
46. पंच देव	गद्य
47. नवग्रह : एक परिचय	गद्य
48. हमारी आराध्या देवियाँ	गद्य
49. आदर्श नारियाँ	गद्य
50. भारतीय दर्शन सार	गद्य
51. कर्म–विवेचन	गद्य
52. भगवती सीता	गद्य
53. भगवती दुर्गा	गद्य
54. महावीर कर्ण	गद्य
55. गढ़मुक्तेश्वर महिमा	गद्य
56. कहाँ गयी बुलंदशहर की बुलंदी	गद्य
57. पौराणिक मंदिर	गद्य
58. ज्योति	उपन्यास
59. कर्तव्य बोध	उपन्यास
60. बातूनी झींगुर	बाल उपन्यास

आदि 75 कृतियाँ